शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अगस्त 2022
पीअर रीव्यूड रेफ़्रीड रिसर्च जर्नल

महाश्वेता देवी के उपन्यासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

श्यामली पांडेय (शोधार्थी)
डॉ.बिजय कुमार प्रधान (शोध निर्देशक)
एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
वनस्थली विद्यापीठ
राजस्थान, भारत

शोध संक्षेप

बंगाल की प्रख्यात लेखिका महाश्वेता देवी का लेखन और उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता की चर्चा एक-दूसरे के बिना अधूरी है। उनकी रचनाओं में सामाजिक समस्याओं और तत्कालीन इतिहास का अद्भुत समन्वय है। उन्होंने अपनी रचनाओं में आदिवासी, दलित, मध्यवर्गीय जीवन, स्त्री जीवन एवं नक्सलवाद की समस्याओं का जीवंत चित्रण किया है। हमारी व्यवस्था नक्सलवाद की समस्या की जड़ और उनके कारणों पर विचार करने की बजाय उनसे जुड़े लोगों को ख़त्म करने में लगी रही, जिसकी वजह से ये समस्या आज भी बनी हुई है। महाश्वेता देवी ने अपनी रचनाओं में नक्सलवाद पर खुल कर लिखा है। उन्होंने जिस रूप में देखा, अनुभव किया उसे उसी तरह से बिना किसी लाग-लपेट के पाठक वर्ग के सामने प्रस्तुत कर दिया। उनके लेखन का एकमात्र उद्देश्य समाज, सरकार एवं राजनीति के यथार्थ को पाठक के सामने पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करना रहा है। इस शोध पत्र में उनके उपन्यासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द :. *नक्सलवाद, आदिवासी, प्रशासन, शोषित, दलित, राजनीति*

भूमिका

साहित्य को वास्तविक जीवन की रागात्मक अभिव्यक्ति कहा जाये तो ग़लत नहीं होगा, क्योंकि साहित्य ही है जो समाज एवं उसकी सच्चाई के साथ गहनता से जुड़ा हुआ है। समय के साथ इसका रूप अवश्य बदल सकता है, लेकिन इसके मूल में स्थित समाज और उसका यथार्थ कभी नहीं बदलता। साहित्यकार दो प्रकार के होते हैं : पहले वे जो समाज में घटित होती घटनाओं की संवेदनाओं को महसूस करते हैं और लेखन के माध्यम से उस पर अपनी प्रतिक्रिया देते हैं। दूसरे प्रकार के साहित्यकार वे होते हैं जो समाज में जो घटित हो रहा है उसे देख कर उसे बदलने की कोशिश करते हैं और समाज उत्थान के साथ-साथ लेखन कार्य करते हैं। महाश्वेता देवी दूसरी श्रेणी में आने वाली लेखिका हैं। वे न सिर्फ़ साहित्य की सेवा करती दीखती हैं, बल्कि समाज की सेवा भी करती हैं। जिसके लिए उन्हें देश-विदेश में काफ़ी सम्मानित किया गया है। महाश्वेता देवी ने अपनी रचनाओं में तत्कालीन समाज की प्रमुख समस्याओं को स्थान दिया है। जिनमें से एक नक्सलवाद की समस्या भी है। उनका साहित्य नक्सलवादी आंदोलनों का एक प्रामाणिक दस्तावेज़ है, जो नक्सलवादी आंदोलनों

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अगस्त 2022
पीअर रीव्यूड रेफ़्रीड रिसर्च जर्नल

एवं घटनाओं के होने के कारणों का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

‘नक्सल’ शब्द की उत्पत्ति ‘नक्सलबाड़ी’ गाँव से हुई जो पश्चिम बंगाल में स्थित है। “1967 में नक्सलबाड़ी गाँव से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेता चारु मजूमदार और कानु सान्याल ने सत्ता के खिलाफ एक सशक्त आंदोलन की शुरुआत की थी। चूँकि यह आंदोलन नक्सलबाड़ी गाँव से प्रारंभ हुआ था इसलिए इस आंदोलन को नक्सलवादी आंदोलन कहा जाने लगा।”[1] यह एक सशस्त्र आंदोलन था, जिसका मुख्य उद्देश्य शोषक वर्ग के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाना था।

इस आंदोलन के प्रमुख नेता चारु मजूमदार चीन के नेता माओत्से तुंग से काफ़ी प्रभावित थे। चारु मजूमदार का मानना था कि भारतीय किसानों की दयनीय स्थिति के लिए सरकार एवं उसकी नीतियाँ ज़िम्मेदार हैं और इनसे बात करके कोई समाधान निकलने वाला नहीं, क्योंकि वे सुनेंगे नहीं। आंदोलन से ही अपनी बातें उन तक पहुँचाई जा सकती हैं और मनवाई जा सकती हैं। नक्सलवादी आंदोलन का प्रमुख कारण था गरीब किसानों की ज़मीन उनसे छीन लेना और उन्हीं की ज़मीन पर उनसे मज़दूरी करवाना एवं उनके हक़ का अनाज और पैसा उन्हें न देना। आदिवासी किसानों का सब कुछ उनकी भूमि और जंगल ही रहा है, लेकिन दिन-प्रतिदिन उनसे उनके हक़ की चीजें छीनते जाने की वजह से उनका आक्रोशित होना और ऐसे कदम उठाना उनकी दृष्टि में जायज़ था। लेखिका ने इन्हीं आदिवासियों की नक्सलवादी बन जाने की कथा को कथा साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

महाश्वेता देवी कृत प्रमुख उपन्यास ‘अक्लान्त कौरव’, ‘अग्निगर्भ’, ‘1084 की माँ’ में नक्सलवादी आंदोलन के कारणों का वर्णन किया गया है। ‘अग्निगर्भ’ की प्रस्तावना में देवी जी लिखती हैं, “मेरी कहानियों की पृष्ठभूमि का उद्देश्य प्रमुखतः नक्सलबाड़ी घटनाओं और उसकी पृष्ठभूमि का उद्देश्य प्रधानतः होने के बाद भी यह मानना होगा कि इस देश के कई दशकों की जीवन यात्रा में वही सबसे अधिक उल्लेखनीय और अनुप्राणित होने योग्य घटना है। बसाई टूडु, द्रोपदी की ये सारी घटनाएं ही तत्कालीन परिणाम है, यद्यपि संग्राम में उन्होंने ही समाज में परिवर्तन किया और परिणाम में नाम और स्थानीय अवस्थिति के सिवा काल और देश के प्रतीक बन गए।”[2]

छोटे एवं पिछड़े इलाक़ों, गाँव में शोषित वर्ग के युवा विद्रोहियों को ही नक्सली का दर्ज़ा दिया जाता है। ये भूस्वामियों एवं ज़मींदारो के विरोध में आंदोलन कर अपने हक़ एवं शोषण के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाते हैं। इन्ही में शामिल है ‘अग्निगर्भ’ उपन्यास का प्रमुख पात्र बसाई टूडु। बसाई की लड़ाई बंधुआ मज़दूरी के ख़िलाफ़ है। वह सभी आदिवासियों को उनकी ज़मीन वापस दिलाने के लिए आंदोलन करता है, इसलिए वह ज़मींदारों, सरकार एवं अपनी राजनैतिक पार्टी की आँखों को बिल्कुल भी नही सुहाता। उपन्यास के दूसरे पात्र काली को मज़दूरों की ज़मीनी हक़ीक़त बताते हुए कहता है “तुम बाबू लोग पार्टी में आते हो और क्या काली बाबू ? सन्थाल, खेतमजूर मिशन का पढ़ा-लिखा फिर खेत-मजूर। तुम कहते हो पैंतालीस साल से किसान सभा कर रहे हो ? तैतालिस साल में ज़िला किसान सभा के नकुल बाबू मुझे माईमानसि (मैमनसिंह नगर) ले गए। वहाँ पहली बार माँग हुई थी खेतमजूर को एम. डब्लू. देना होगा। खेत मजूर किसान से अलग नहीं हैं। आज जो किसान है, महाजन को

ज़मीन बंधक देकर कल वह खेतमजूर हो जाता है। हाँ काली बाबू उसके बाद बर्धमान में, मेदिनीपुर में खेतमजूर पार्टी हुई किंतु जब देखा किसान सभा ने खेतमजूर दल को हराम की संतान की तरह छोड़ दिया क्यों ? उस समय मदद नही दी, तब से अपनी बात सोचने लगा खेत मजूर समाज की बात।"[3]

असल में, उस वक्त पश्चिम बंगाल में जहाँ एक ओर बड़े-बड़े भूस्वामी ज़मींदार लोग थे, वहीं दूसरी ओर बड़ी तादाद में वे लोग थे जिनके पास जोतने के लिए ज़मीन नही थी और उनकी जीविका का एक मात्र साधन खेती करना था। ऐसे ही भूमिहीन किसानों को खेत मजूर कहा गया। "इन भूमिहीन कृषकों को ज़मीन देने के नाम पर सरकार की ओर से कई क़ानून बनाये, जिसमें बड़े भूस्वामी की अतिरिक्त भूमि लेकर इन्हें दे दी जाए, लेकिन बड़े ज़मींदारों के छल के कारण उन्हें कभी ज़मीन नही मिली, क्योंकि सभी बड़े भूस्वामी ही राजनीति और प्रशासनिक व्यवस्था से जुड़े हुए थे।[4]

महाश्वेता देवी नक्सलवादी आंदोलन पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहती हैं "मेरे सामने नक्सल आंदोलन हुआ था, मैंने अपनी आँखो से उस आंदोलन को देखा। यह भी देखा कि जो आंदोलन कर रहे हैं वे कुछ नहीं माँगते। न पावर माँगते, न वोट, पर उनमें ग़ज़ब का करेज़ था। वे जानते थे कि देखते ही पुलिस या एंटी पार्टी द्वारा मार डाले जाएँगे पर वे डरते नही थे।"[5]

उनकी इसी हिम्मत को तोड़ने के लिए ही तो सरकार, प्रशासन एवं ज़मींदार वर्ग हर संभव प्रयास करता रहा, लेकिन वह उनको तोड़ने में नाकाम रही।

'द्रोपदी' उपन्यास में आदिवासी स्त्री के साहस की कहानी है। जिसे नक्सली होने के दंड के साथ-साथ प्रशासन औरत होने का भी दंड देती है। सेना उसे बहुत समय से खोज रही है और जब वह उनके हाथ लगती है तो सेना के अफ़सर और सिपाही अपनी खुन्नस उसका बलात्कार कर के निकालते हैं। लेकिन फिर भी द्रोपदी टूटती नही है, बल्कि सिंहनी की तरह दहाड़ते हुए वह नग्न ही अफ़सरों के सामने जा खड़ी होती है और कहती है, "तेरे तलाश का मानुस, दोपदी माझिन। ठीक कर लाने को कहा था, सो किस तरह ठीक किया है देखेगा नहीं ?"[6]

द्रोपदी का ऐसा साहसी रूप देख कर वहाँ के सारे सिपाही, अफ़सर डर जाते हैं। एक स्त्री इतनी यातनायें झेलने के बाद भी निडरता के साथ मुक़ाबला करती है। उसके साहस को तोड़ने के लिए उसका दैहिक शोषण. वह भी सरकारी अधिकारियों द्वारा, यह भारतीय प्रशासन के मुँह पर कलंक है। आदिवासी स्त्रियों का दैहिक शोषण करना कोई नयी बात नहीं थी। ये प्रशासनिक कर्मचारी आदिवासियों को अपनी जागीर समझ कर उनका शोषण अपने हिसाब से करते रहते हैं। पहले तो भूस्वामियों द्वारा वे शोषित होते आए हैं और अब जब प्रशासन भी उनका शोषण करेगा तो इस हाल में वे हथियार नहीं उठाएँगे तो क्या करेंगे? और ऐसा भी नहीं था कि नक्सलवादी आंदोलन एक दिन की घटना रही हो। इसके पहले भी आदिवासी एवं दलित लोगों ने कई आंदोलन किए जिसमें बिरसा मुंडा का आंदोलन, मोपला विद्रोह, तेभागा आंदोलन आदि प्रमुख है। बिरसा मुंडा का आंदोलन तो अंग्रेज़ी सरकार के विरुद्ध था, लेकिन बाक़ी आंदोलन आज़ादी के बाद शुरू हुए थे। इसका कारण यह था कि "स्वाधीनता प्राप्ति के दो दशक के बाद भी भारत की आबादी का एक बड़ा तबका शोषण का शिकार हो रहा था। ऐसा महसूस किया गया कि

शब्द–ब्रह्म E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 अगस्त 2022
पीअर रीव्यूड रेफ़्रीड रिसर्च जर्नल

शांतिपूर्ण तरीक़े से ज़रूरी परिवर्तन नही आ पाएँगे, क्योंकि निहित स्वार्थों के हाथ में सत्ता और उद्योगों का नियंत्रण बना हुआ है और खेतिहर वर्ग पर प्रमुखत: सामंती पकड़ बनी हुई है। उनका विचार था कि इन सबसे छुटकारा पाने का एकमात्र तरीक़ा था. सशस्त्र क्रांति।"[7]

महाश्वेता देवी कृत दूसरा महत्वपूर्ण उपन्यास 'अक्लान्त कौरव' अग्निगर्भ उपन्यास के आगे की कथा कहता है। बसाई टूडू और काली सातरा की रहस्यमय मृत्यु के बाद की कथा है। उपन्यास का नायक इंद्र एक पार्टी कार्यकर्ता है। खेत मजूरों को उनके हक़ का मेहनताना दिलाने के लिए पार्टी एवं सरकार के साथ निरंतर संघर्ष करता नज़र आता है। सरकार द्वारा पश्चिम बंगाल में बार्गा आपरेशन चलाया गया था। जिसमें आदिवासियों एवं किसानो को ज़मीन देने वादा किया गया था। लेकिन वादा और क़ानून दोनो सिर्फ़ सरकारी पेपर पर ही रह गए। जिस प्रकार से उन्हें पहले कभी कोई सहायता नहीं मिली, उसी प्रकार आपरेशन बार्गा का भी उन्हें कोई लाभ नही मिला। और अगर उन्होंने माँग करनी चाही तो उन्हें नक्सली कह कर सताया जाना शुरू कर दिया गया। कोई भी आदिवासी अपने अधिकारों की बात करता तो वे सरकारी पार्टी, पुलिस प्रशासन की नज़र में नक्सली हो जाता है। इंद्र ये बात जनता है। इसलिए जब पार्टी के नेता सामंत उसे चरसा गाँव जा कर खेत मजूरों के लिए काम करने को कहता है तो वह कटाक्ष भरे लहजे में पूछता है, "चरसा में रह जाऊँ, खेत मजूर दल बनाऊँ ! अच्छी बात है। मजूरी देते समय किसका पक्ष लूँ ?"

निश्चय ही खेत मज़दूरों का।

जानकारी ले रहा हूँ। मेरी जानी पार्टी लाइन अब दूसरी तहर की बनती जा रही है न ?

पर हंगामा मत करना। मालिक अगर कम देने की जिद्द करे ?

तो उसे ठीक करूँ ?

नहीं-नहीं हंगामा नहीं। उस समय कह-सुनकर आपसी समझौता ठीक रहेगा। नक्सलियों की तरह उग्रता मत अपनाना।

उचित मजूरी का आंदोलन करके हासिल करा दूँ। गाय कहने पर नक्सल हो गया ?"[8]

इंद्र वहाँ से गुस्से से निकल आता है। वह यह समझ गया है कि कोई भी पार्टी हो सत्ता में आने के बाद सबका रूप एक-सा ही हो जाता है। हक़ दिलाने और कल्याण करने की बाते सिर्फ़ वोट माँगने के समय ही काम आती है। उसके बाद उसका कोई मतलब नहीं।

सत्ता में बैठे लोग ये भी जाते हैं कि अगर नक्सलियों एवं आदिवासियों के हौसलों को तोड़ना है तो पहले उनके बीच व्याप्त एकता को तोड़ना होगा। उनके बीच अगर फूट पड़ेगी तो वो किसी भी प्रकार के आंदोलन को अंजाम नही दे पाएँगे। सत्ताधारियों की ऐसी सोच की झलक अक्लांत कौरव उपन्यास में मिलती है। जब सामंत शोधकर्ता द्वैपयान सरकार को संथाल आदिवसियों के विरुद्ध लिखने के लिए चरसा गाँव में भेजता है। और ये सिद्ध करने को कहता है कि सन्थाल लोग डरपोक और कामचोर होते हैं। द्वैपायन शराब के नशे में इंद्र को ये सारी बातें बक देता है, "मैं प्रमाणित कर दूँगा कि संथाल लोग क़तई लड़ाकू नहीं होते हैं। समझे छोकरे, संथालों को आसानी से लालच देकर फुसलाया जा सकता है, बदला जा सकता है, आदिवासी समाज की आदिम एकता है ही बहुत ख़तरनाक। वे बँटे रहे तो हम बने रहेंगे। वे एकजुट होंगे तो हमारा ख़ात्मा हो जाएगा।"[9]

इंद्र को ये सब जान कर बहुत दुःख होता है कि वह और उसके समाज के लोग जिन पर इतना भरोसा करते आए हैं वही लोग इनकी पीठ पर छुरा भोंकने की तैयारी में है। आदिवासी एवं किसान वर्ग का अपना कोई भी नहीं जिस पर वो भरोसा कर सके।

नक्सलवादी आंदोलन सिर्फ़ जंगल में न रहकर शहरों के छात्र-छात्राओं तक भी पहुँच गया था। बड़ी तादाद में कालेज़ की छात्र-छात्रायें इससे जुड़ने लगे थे। लेकिन यहाँ पर भी पुलिस और सरकार का व्यवहार उनके साथ वैसा ही था जैसा आदिवासियों के साथ था।

'1084वें की माँ' उपन्यास शहर में हो रही नक्सली गतिविधियों को मुद्दा बना कर लिखा गया है। उपन्यास का मुख्य पात्र 'व्रती' नामक युवक है, जिसे पुलिस नक्सली कह कर गोली मार देती है। व्रती जैसे युवको की सिर्फ़ ये गलती है कि उनका राजनीति, समाज एवं सामाजिक व्यवस्था पर से भरोसा उठ गया था। उन्हें ये अहसास हो चुका था कि जिस रास्ते पर समाज, राष्ट्र चल रहा है, उससे ने देश का भला होगा और न ही देशवासियों का। इसलिए इसके ख़िलाफ़ आवाज़ बुलंद करना ही होगा। इतिहास गवाह है जब-जब शासन के ख़िलाफ़ जनता में आक्रोश बढ़ा है और जनता सड़क पर उतरी है। सरकार उसे दबाने का हर संभव प्रयास करती है। यही हाल नक्सल आंदोलन का भी था। सरकार आंदोलन करने के कारणों को जानने के बजाय उसे दबाने में जुटी रही। नक्सल गतिविधियों से जुड़े युवकों को सिर्फ़ गोली मार दी जाती तो अलग बात थी, लेकिन पुलिस द्वारा उन्हें प्रताड़ित कर के मौत दिया जाना ये सिद्ध करता है कि वे दूसरों को सबक़ सिखाना चाहते थे कि अगर किसी ने सरकार के खिलाफ बोलने की हिम्मत की तो उनका भी ऐसा हाल किया जाएगा। व्रती की माँ सुजाता जब अपने बेटे की लाश देखती है तो काँप जाती है। "उसकी छाती, पेट और गर्दन पर गोली के तीन निशान थे। नीले गढ़्ढे। बहुत पास से दागी गोलियाँ नीली चमड़ी क़ोरंडाइट की झुलसन से भुनी हुई। बादामी खून के गड्ढे के चारों तरफ़ की झुलसन से बना खोखला चकत्ता, कटी-फटी चमड़ी। गर्दन पेट और छाती में तीन गोलियाँ, व्रती का चेहरा! किसी तेज और भारी औज़ार से पिछले हिस्से से मार-मारकर कुचला हुआ व्रती का चेहरा।"[10]

प्रशासन के हिसाब से हर सरकार विरोधी आंदोलनकर्ताओं की यही सज़ा है। तभी तो अग्निगर्भ की द्रोपदी के साथ भी वही सलूक करते हैं जो व्रती के साथ किया। बस द्रोपदी को मारते नहीं है, लेकिन उसे जीने लायक़ भी नहीं छोड़ते।

महाश्वेता जी व्रती की मृत्यु पर उसके पिता दिव्यनाथ के माध्यम से पतन की ओर बढ़ते देश और समाज, नेता एवं राजनीति पर कटाक्ष करते हुए लिखती है "इस समाज में बड़े-बड़े हत्यारे हैं जो खाने की चीजों में दवाई में, बेबी फ़ूड में मिलावट करते है, वे ज़िंदा रह सकते हैं। इस समाज के नेता लोग निहत्थे गाँव वालों को पुलिस की गोली के सामने धकेल कर ख़ुद मकान, गाड़ी समेत पुलिस के पहरे में बेखटके, निडर होकर ज़िंदा रह सकते हैं। लेकिन व्रती तो उन लोगों से भी बड़ा अपराधी है, क्योंकि उसने विश्वास खो दिया था। इस मुनाफ़ाख़ोर, स्वार्थान्ध, व्यवसायी समाज और उनके नेताओ पर विश्वास खो दिया था। यह विश्वासहीनता जिस भी बच्चे के मन में घर बना लेती है उसकी उमर बारह, सोलह या बाईस की चाहे जो भी हो, उसके लिए एक ही सजा निश्चित है.मृत्यु"[11]

दिव्यनाथ की कही बातें ग़लत नहीं है। इस देश में ग़लत करने वालों के ख़िलाफ़ कोई भी कार्यवाही नहीं की जाती। सूली पर हमेशा निर्दोष ही चढ़ता है और अगर ये अपनी निर्दोष साबित भी कर दे फिर भी ये दोषी ही रहेंगे। इसी व्यवस्था पर हमारी सरकारें शासन करती आई है और आगे भी करती रहेंगी। नक्सल जैसे विषयों पर लिखने एवं तत्कालीन सरकार की नीतियों एवं प्रशासन की कमज़ोरियों पर लिखने की वजह से देवी जी पर विपक्षी होने का भी आरोप लगाया गया है। जोकि एक तरफ़ा निर्णय है। उनके साहित्य को पढ़ने और उस पर विचार करने से ये बात साफ़ होती है कि देवी जी किसी पार्टी के समर्थन देने के लिए नहीं लिख रही थी। वो सिर्फ़ दबे कुचले आदिवासियों का नक्सली बनाने के कारणों पर विचार करती है। कृपाशंकर चौबे से हुई बातचीत में वो ये बात साफ़ तौर पर कहती भी है, "मेरे लेखन को पढ़ कर प्रायः समझ लिया जाता है कि मैं मार्क्सवादी हूँ। पर ऐसा नहीं है। मैंने बताया न कोई 'पोलिटिकल थ्योरी' नहीं पढ़ी है। मेरे पति और बेटे तक ने कहा मैं मार्क्स को पढ़ूँ। पर मैंने मार्क्स एंगेल्स, लेनिन या माओत्से तुंग को बिल्कुल नहीं पढ़ा है। मैंने सिर्फ़ मनुष्य को पढ़ा है और कोई थ्योरी नहीं पढ़ी। मैंने भूखो को पढ़ा है। मैंने भूखों को देखा है। मेरा ख़्याल है, भूख से ज़्यादा बड़ी कोई थ्योरी नही होती।"[12]

इनकी यही बातें और बेबाक़ी उन्हें अन्य साहित्यकारों से अलग खड़ा करती है। जिसने जीवन की कड़वी सच्चाई को प्रत्यक्ष रूप से देखा है वह कभी भी किसी एक पक्ष या ग़लत लोगों के साथ खड़ा नहीं हो सकता। देवी जी का आदिवासी समाज पर लिखा हुआ साहित्य कोरी कल्पना नहीं अपितु सच की नींव पर बनी वह दीवार है जिससे टकरा कर कुछ खीझ जाते हैं, कुछ सोचने पर मजबूर हो जाते हैं तो कुछ अपना दुःख दर्द उसमें पाते हैं।

निष्कर्ष

साहित्यकारों ने जनसरोकारों से जुड़े मुद्दों पर अपनी लेखनी चलायी है। समाज का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है। शोषणविहीन समाज की रचना यथार्थ के धरातल पर ही हो सकती है। भूमिसुधार क़ानून समस्या से मुक्ति का कारगर उपाय है। आजादी के बाद से सरकारों ने इस ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। इस उपेक्षा से नक्सलवाद जैसी समस्या उभरी है। महाश्वेता देवी ने अपने साहित्य में नक्सलवाद के कारणों और सरकार की विफलता को सूक्ष्मता से उभारा है।

संदर्भ ग्रन्थ

1 नरेंद्र कुमार शर्मा, भारत में नक्सलवाद, प्रथम संस्करण 2012, महेंद्र बुक कम्पनी गुड़गाँव, हरियाणा, पृष्ठ 1

2 महाश्वेता देवी, अग्निगर्भ, तृतीय संस्करण 2015, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 9

3 अग्निगर्भ, महाश्वेता देवी, पृष्ठ 33

4 लक्ष्मीकांत पांडेय और प्रमिला अवस्थी, भारतीय साहित्य, प्रथम संस्करण, आशीष प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ 298

5 कृपाशंकर चौबे, महाअरण्य की माँ, प्रथम संस्करण 2003, आधार प्रकाशन, हरियाणा, पृष्ठ 66

6 महाश्वेता देवी, अग्निगर्भ, पृष्ठ 162

7 जयवीर सिंह नक्सलवाद का भारत की आंतरिक सुरक्षा पर प्रभाव, प्रथम संस्करण 2015, राहुल पब्लिशिंग हाउस मेरठ, पृष्ठ 1

8 महाश्वेता देवी, अक्लान्त कौरव, तृतीय संस्करण 2008, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 23

9 महाश्वेता देवी, अक्लांत कौरव, पृष्ठ संख्या 67

शब्द-ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
E ISSN 2320 – 0871
17 अगस्त 2022
पीअर रीव्यूड रेफ़्रीड रिसर्च जर्नल

10 महाश्वेता देवी, 1084वें की माँ, आठवां संस्करण 2015, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 20
11 महाश्वेता देवी, 1084वें की माँ, पृष्ठ 29
12 कृपाशंकर चौबे, महाअरण्य की माँ, प्रथम संस्करण 2003, आधार प्रकाशन, हरियाणा, पृष्ठ 79